गोपिकागीतम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत विद्योत्तमाटीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक

श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

Notion Press

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2021

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

गोपिकागीतम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत विद्योत्तमाटीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

Notion Press

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे ।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ।।



श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

--*

गोपिका गीत श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के ३१वें अध्याय से लिया गया है। इसमें गोपियों के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति की गयी विरह प्रार्थना का वर्णन है। प्रस्तुत संस्करण निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा गोपिका गीत पर लिखी गयी विद्योत्तमा टीका के हिन्दी अनुवाद के साथ है।

--*

गोपिकागीतम्

यत्पादपद्मरजसा खलु सर्वविघ्ना
अज्ञानकल्मषकुबुद्धिकुमार्गजन्याः ।
दूरीकृता विमलमङ्गलसिद्धहस्तं
वन्दे महेशतनयं गिरिजात्मजं तम् ॥०१॥

स एकदा निग्रहो वैष्णवैराहूतोऽयोध्यां जगाम। तत्त्वोनवत्सरस्तमुपलक्ष्य वैष्णवाः स्वागतं स्वागतमिति ब्रुवन् यथोचितेऽयने स्थापितवन्तः। सरयूजले स्नात्वाह्निकं कृत्वा स तु दिवसाग्रे देशदेशान्तरागतैः पौरैर्विष्णुधर्मपरायणैः सज्जितवन्तं सभामण्डपं प्रविवेश। तं धूम्रजटिलं ब्रह्मदण्डपाणिनं स्वतपःप्रभयान्वितमष्टधातुभुजङ्गाङ्गद - रुद्राक्षकुण्डलवैजयन्तिमाल्यसौरपुण्ड्रधारिणं व्रतादिभिः प्रक्षीणगात्रं निग्रहाचार्यं दृष्ट्वा सभासदो विसिष्मियिरे। कुत्र विशेयमिति चिन्तयन् स शान्तमना सभान्तकोणे भूमौ स्थित्वा विष्णुध्यानरतो बभूव। तदा तद्रहस्यवेत्तारो वैष्णवास्तं पुरस्कृत्योच्चासने स्थापयामासुः। सुग्रीवदुर्गाधिपतेर्वैकुण्ठगमनं ज्ञात्वा संस्तुवन्

श्रीरामानुजशिष्यखेचरपतिर्यो विष्णुधर्मान्वितस्तं वन्दे परमात्मधामनिरतं सुग्रीवदुर्गाधिपमिति संस्मृत्य जनानां पुरतो घटिकार्द्धपर्यन्तमुपदिष्टवान्। अथ केचित्तं कोऽयमिति कुतश्चागतोऽल्पवयस इति कमाराधयतीति मुहुर्मुहुः पप्रच्छुस्तदाभेददर्शी च देवेषु शास्त्रप्रामाण्यरक्षको निग्रहागमसद्वेत्ता ब्रह्मचिन्तनतत्परो निग्रहोऽहमिति प्रत्यभासत। एवं निग्रहोक्तिं श्रुत्वा जहसुस्ते किमिदं धृतं त्वयेति। सोऽब्रवीदयं वाशिष्ठविधानोक्तो मम नक्षत्राधिपतिचिह्नितो ब्रह्मदण्ड इति। एवं श्रुत्वा तत्त्ववैष्णवाः साधुसाध्वित्यूदुः किन्तु छद्मवैष्णवा जहसुः। पुनस्तेऽयं धर्मध्वजी पाखण्डी वास्ति ब्रुवन् जहसुरजानन्निग्रहस्य वार्तां तदा सोऽचिन्तयत्। वेशधारिणो वैष्णवाः सहस्राणि सन्त्यत्र दुर्लभस्तत्त्वबोधितः। नेतॄणामेकश्चाटुकारोऽपरः सङ्ग्रही न विष्णुचिन्तको यथोक्तं शम्भुना महिषमर्दिनीतन्त्रे कलौ छद्मवैष्णवा उदरम्भरिणो हरिविक्रयिणो भविष्यन्ति सत्यमेतत्। जातिस्मरत्वेन जानेऽहं व्यतीते कलौ त्रिसहस्राब्द उज्जयिन्यां विक्रमार्कस्य भूपतेर्नवमहीपतिमण्डले पृथ्वीसिंह इति सामन्तासमाजौ शकैश्च विनिपातितः। अहो कालस्य माहात्म्यं कालस्य गतिरीदृशी। जन्मन्यस्मिन्न मे राज्यं न हर्म्यंञ्चतुरङ्गिणी। इमे न जानन्ति विष्णुधर्मं यतो

मामुपहसन्ति तस्मादत्र न स्थातव्यमित्येवं भोजनेन विना स वृन्दावनं प्रति जगाम। त्रिदिवसान्तरे मार्गमुपलङ्घ्य वृन्दावनमागत्य श्रीकृष्णवक्रविहारिणं दृष्ट्वा गव्यमाश। वृत्तान्तमेतज्ज्ञात्वा दुर्गपतिमहान्तो विमना बभूव यस्मादाचार्यो निराशीर्गतः स्वशिष्यं निग्रहं प्रतीङ्ङ्खाञ्चकार क्षापयामास। यो विष्णुः स शिवः साक्षाद्देवी सा गणनायकः। दिवाकरे तु योऽभेदः किं न जानन्ति दुर्जनाः ? कथमेते छद्मवैष्णवा मां द्रुह्यन्तीति विचिन्त्य निग्रहाचार्योऽवतारप्रशस्तौ महावतारस्तुतिं रचयामास। पुनश्च श्रीसूक्ते शङ्करभाष्यं, पौरुषे पुरुषोत्तमं, गोपिकागीते विद्योत्तमाटीकाञ्च वेदस्तुतौ सर्वोत्तमाटीकां लिलेख।

एक बार वैष्णवों के निमन्त्रण देने पर निग्रहाचार्य अयोध्या गये। तेईस वर्ष की अवस्था वाले उन्हें देखकर वैष्णवों ने "स्वागत है, स्वागत है" ऐसा कहते हुए यथोचित भवन में उन्हें ठहराया। सरयू के जल में स्नान एवं नित्यक्रियाओं को करके उन्होंने अगले दिन देश-देशान्तर से आये हुए विष्णुधर्मपरायण प्रजाजनों से सुसज्जित सभामण्डप में प्रवेश किया। उन धूम्रवर्ण की जटाओं वाले, ब्रह्मदण्ड को हाथों में धारण किये हुए, अपनी तपस्या की प्रभा से युक्त, अष्टधातु के सर्प को भुजा में पहने, रुद्राक्ष के कुण्डल, वैजयन्ती की माला एवं सौरपुण्ड्र को धारण किये हुए,

व्रत आदि के द्वारा क्षीण शरीर वाले निग्रहाचार्य को देखकर सभासदगण विस्मित हो गये। "मुझे कहाँ बैठना चाहिए ..." ऐसा सोचते हुए वे शान्त मन से सभा के अन्तिम कोने में भूमि पर बैठकर भगवान् विष्णु के ध्यान में लीन हो गये। तब उनके रहस्य को जानने वाले वैष्णवों ने उनका सम्मान करते हुए ऊंचे आसन पर बिठाया। सुग्रीवकिलाधीश के वैकुण्ठगमन को जानकर उनकी स्तुति करते हुए,

"श्रीरामानुजाचार्य जी के शिष्यों में सूर्य के समान, जो विष्णुधर्म में स्थित हैं, उन परमपद को प्राप्त सुग्रीवदुर्गाधिपति को मैं प्रणाम करता हूँ",

ऐसा स्मरण करके लोगों के समक्ष उन्होंने आधी घड़ी तक उपदेश किया। इसके बाद कुछ लोग उन्हें "यह कौन है, कहाँ से आया है, यह छोटी आयु वाला किसकी आराधना करता है" ऐसा बार बार पूछने लगे तब "मैं देवताओं में अभेददर्शन करने वाला, शास्त्रप्रामाण्य की रक्षा करने वाला, निग्रहागमों के रहस्य को जानने वाला, ब्रह्मचिन्तन में रत निग्रहाचार्य हूँ", ऐसा उन्होंने उत्तर दिया। निग्रहाचार्य के ऐसे वचन को सुनकर वे लोग हंसने लगे और पूछा कि "यह तुम्हारे हाथ में क्या धारण कर रखा है ?" निग्रहाचार्य ने कहा - "वशिष्ठ की परम्परा में उक्त विधान के अनुसार यह मेरे नक्षत्राधिपति के चिह्न से युक्त ब्रह्मदण्ड है।"

इस बात को सुनकर तत्त्वज्ञ वैष्णवों ने साधु-साधु ऐसा कहा किन्तु छद्मवैष्णवों ने उपहास किया। फिर वे छद्मवैष्णव, "यह धर्मध्वजी है, पाखण्डी है" ऐसा कहते हुए हंसने लगे क्योंकि वे उनके वास्तविक रूप को नहीं जानते थे। फिर निग्रहाचार्य ने विचार किया कि यहाँ कोई एक तो नेताओं का चाटुकार है तो दूसरा सङ्ग्रहपरायण है, विष्णुचिन्तक नहीं। वेश से तो हजारों वैष्णव हैं किन्तु जिसे तत्त्व का बोध हो, वह दुर्लभ ही है। जैसा शिव जी ने महिषमर्दिनी तन्त्र में कहा है कि कलियुग में छद्मवैष्णव होंगे जो केवल पेट भरने एवं भगवान् को बेचने वाले होंगे, वह सत्य ही है। मैं जातिस्मरसिद्धि से यह जानता हूँ कि कलियुग के तीन हज़ार वर्ष बीतने पर उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य के नवमहीपतिमण्डल में मैं पृथ्वीसिंह नाम का सामन्त था जो युद्ध में शकों के द्वारा मार दिया गया था।

अहो ! काल का कैसा माहात्म्य है, काल की यह कैसी गति है ? इस जन्म में न मेरे पास राज्य है, न महल है और न चतुरंगिणी सेना ही है। ये सब लोग विष्णुधर्म को नहीं जानते हैं, सो मेरा उपहास कर रहे हैं, अतएव अब यहाँ रुकना नहीं चाहिए। इस प्रकार से बिना भोजन किये ही वे वृन्दावन को चले गये। तीन दिनों के बाद मार्ग को पूर्ण करके वृन्दावन पहुँचकर श्रीकृष्ण बांकेबिहारी जी का दर्शन करके उन्होंने गव्यप्राशन किया। इस वृत्तान्त को जानकर दुर्गपति महन्त खिन्न हो गये कि एक आचार्य

बिना भोजन किये ही चले गये एवं अपने शिष्य को निग्रहाचार्य के पास भेज कर उन्होंने क्षमा मंगवायी। जो विष्णु हैं, वह साक्षात् शिव हैं, वही देवी और गणनायक हैं। सूर्य में भी अभेद है, क्या ये दुर्जन इसे नहीं जानते ? फिर क्यों ये छद्मवैष्णव मुझसे द्रोह करते हैं, ऐसा सोचकर निग्रहाचार्य ने सभी अवतारों की प्रशस्ति में महावतारस्तुति की रचना की। फिर श्रीसूक्त पर शङ्करभाष्य, पुरुषसूक्त पर पुरुषोत्तमभाष्य, गोपिकागीत पर विद्योत्तमाटीका एवं वेदस्तुति पर सर्वोत्तमाटीका लिखी।

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका -
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

भावार्थ - गोपियों ने कहा - हे प्यारे ! तुम्हारे जन्म लेने के कारण वैकुण्ठ आदि लोकों से भी अधिक व्रजमण्डल की महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य एवं माधुर्य की देवी लक्ष्मी जी अपना धाम छोड़कर यहाँ की सेवा के लिए नित्य निवास करने लगी हैं। किन्तु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ, जिन्होंने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वे वन-वन में भटक कर तुम्हें ढूँढ रही हैं।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

एतास्तु श्रुतयः सर्वा व्रजे गोपकुमारिका इति निग्रहागमेषु। परब्रह्मणः शब्दशक्तयश्च। वैशिष्ट्यभावाज्जयस्तेन जयति। जन्मनावतारेण सामान्यत्वादधिकमुत्कर्षेण राजते। चतुर्व्यूहविलासदासगणैरिष्टो विजायते तत्तु दिव्यं न भौतिकम्। अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममाययेति श्रीकृष्णः। जन्म कर्म च मे दिव्यमिति गीतायाम्। व्यापनाद्व्रज उच्यते व्यापको ब्रह्म उच्यत इति स्कान्दे। स्वचिन्तामपहाय श्रीनिवासचरणारविन्दकलितललितविगलिताम्बुपानमत्ता मन्दस्मिता मन्दगामिनीन्दिरा व्रजमलङ्कुर्वती वर्तते। त्वयि परात्परे ब्रह्मणि निष्कले धृतप्राणा गोपयस्त्वामाकारयन्ति। दृग्गोचरप्रत्यक्षीभूयतामिति।

निग्रहागमों का वचन है कि व्रज में जो गोपियाँ हैं, वे सब वेदों की श्रुतियाँ हैं और परब्रह्म की शब्दशक्तियाँ हैं। विशिष्ट भाव के कारण जय है, अतएव शोभित होता है। जन्म का अर्थ अवतार है जिसके कारण सामान्य से अधिक उत्कृष्ट शोभायमान है। चतुर्व्यूहविलास के भक्तजनों के द्वारा पूजित होकर जो जन्म होता है, वह दिव्य है, भौतिक नहीं। अजन्मा एवं अविनाशी होने

पर भी, सबों का स्वामी होने पर भी अपनी प्रकृति का अधिष्ठान बनकर अपनी माया से ही प्रकट होता हूँ, ऐसा गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है। मेरे जन्म एवं कर्म दिव्य हैं, ऐसा गीता में है। व्याप्त होने से व्रज कहलाता है, सर्वव्यापी ब्रह्म व्रज है, ऐसा स्कन्दपुराण का वचन है। अपनी चिन्ता को छोड़कर श्रीनिवास भगवान् के चरणकमलों से स्पर्शीभूत सुन्दर द्रव चरणोदक को पीकर प्रमुदित होने से मन्द मन्द मुस्काने वाली, मन्द मन्द गति से चलने वाली इन्दिरा है जो व्रज को शोभित करती हुई रह रही हैं। पर से परे, तुझ कलातीत ब्रह्म में जिन्होंने अपने प्राण स्थापित कर दिये हैं, ऐसी गोपियाँ तुम्हें बुला रही हैं। आप हमारे नेत्रों के अन्तर्गत प्रत्यक्ष हों, ऐसा भाव है।

शरदुदाशये साधुजातसत्
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥०२॥

भावार्थ - हे हमारे प्रेमपूर्ण हृदय के स्वामी ! हम तो आपकी बिना मोल की दासी है। तुम शरत्कालीन सुन्दर जलाशय में से कमलकर्णिका की छटा के सौन्दर्य को चुराने वाले नेत्रों से हमें घायल कर चुके हो। हे प्रिय ! क्या केवल अस्त्रों से हत्या करना

ही वध होता है ? इन नेत्रों से मारना हमारा वध करना नहीं है ?

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

दास्यतेऽस्मै भृतिस्तेन दासस्त्रीत्वे दासिका। शुल्कहीना निष्कामभावेन ददात्यात्मानमित्यशुल्कदासिका। शरदित्यृतुरथवा पद्मः। पद्यमानं सरिद्धारावत्प्रवाहमानं जगन्मिनोति तस्मात्कालः पद्ममिति वैष्णवागमे। कालोऽस्मीति गीतायां श्रीकृष्णः। सरसि जायते सरसिजं चन्द्रो पद्मो वा। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहमिति गीतायाम्। कान्तभावनयाराधितो गोविन्दो यथेष्टकामप्रपूरयिता भवितुमर्हति। दर्शनीयो दर्शनासवोऽदर्शनेन गतासून् भक्तान्न हन्ति किमु दृग्रूपशुल्केनैव दासीरपि त्यागेन न केवलं शस्त्रघातैरपित्वदर्शनत्वेन च।

जिसे वेतनपूर्वक आजीविका दी जाये, वह दास है। स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर दासिका है। बिना शुल्क के, निष्काम भाव से अपने आप को निवेदित करने वाली अशुल्कदासिका है। शरत् शब्द से ऋतु अथवा पद्म का बोध है। नदी के प्रवाह के समान गतिशील जगत को नष्ट करने से काल को पद्म कहते हैं, ऐसा वैष्णवागम में है। मैं काल हूँ, ऐसा श्रीकृष्णवचन गीता में है।

जलाशय में उत्पन्न होने से चन्द्रमा या कमल को पद्म कहते हैं। जो जिस भाव से मेरी आराधना करता है, मैं उसी भाव से उसका भजन करता हूँ, ऐसा गीता में है। पतिभाव के द्वारा आराधित हुए गोविन्द यथाभिलषित कामना को पूर्ण करने वाले होने चाहिये। जो दर्शनीय है, उसके दर्शन में ही प्राण स्थित हैं जिनके, ऐसे दर्शनवञ्चित होकर प्राण त्यागने वाले भक्तों को क्या नहीं मारते हैं ? दर्शन ही जिनके दासीत्व का मूल्य है, ऐसी दासियों के त्याग से भी उनका हनन होता है, मात्र शस्त्रप्रहार से ही नहीं, अपितु अदर्शन से भी।

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसा -
द्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया -
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥०३॥

भावार्थ - हे पुरुषश्रेष्ठ ! कालिय नाग के विष से दूषित यमुना जल से होने वाली मृत्यु, अजगर के रूप में भक्षण करने वाला अघासुर, इन्द्र की वर्षा, आकाशीय बिजली-आँधी, दावानल, तृणावर्त, वृषभासुर और व्योमासुर आदि से उत्पन्न संकटों से अलग-अलग समय पर सब प्रकार से तुमने बार-बार हमारी रक्षा की है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

वैनतेयभयात्कालियो यमुनाकुण्डे निवसञ्जलं दूषयति स्म। फणिनिग्रहेण त्वया जना रक्षिताः। विशेषेण आसमन्तादलतीति व्यालः सर्पः कालो वा। कालमृत्युभयादुधृत्य मोक्षमार्गं ददाति। व्यालरूपिणाघासुराद्ररक्ष। महेन्द्रकोपचोदितेन सम्वर्तकनदनुना धर्षितान् व्रजौकान् सोपस्करान्ररक्ष। एवं जड़दावाग्निनाथवा भवाटवीस्थिताग्निना स रक्षयति। वृषात्मजेन कुणपवत्सेन मयसूनुना व्योमेन ताडितान्व्रजस्थान्ररक्ष। एवमसङ्ख्यातेभ्यः सङ्कटेभ्यो त्वमस्माकं मुहुर्मुहू रक्षितवानसि।

विनतापुत्र गरुड के भय से कालिय यमुनाजी के कुण्ड में रहता हुआ जल को प्रदूषित करता था, उस नाग का निग्रह करके आपके द्वारा लोगों की रक्षा की गयी। जो विशेष करके सम्पूर्णतया भक्षण कर जाये, वह व्याल है। सर्प एवं काल, दोनों को व्याल कहते हैं। आप कालमृत्यु के भय से उद्धार करके मोक्षमार्ग देते हैं। सर्परूपी अघासुर से भी रक्षा की। महेन्द्र के क्रोध से उत्प्रेरित संवतर्क मेघ के द्वारा पीड़ित किये जा रहे व्रजवासियों तथा उनके संसाधनों की रक्षा की। साथ ही भौतिक

जड़ वन में लगी अग्नि तथा संसाररूपी वन, भवाटवी की अग्नि से वह (कृष्ण) रक्षा करता है। वृषासुर के पुत्र वत्स नामक राक्षस, मय दानव के पुत्र व्योमासुर के द्वारा ताडित व्रजस्थानवासियों की रक्षा की। इस प्रकार से असंख्य बार संकटों से आपने हम सबों की बारम्बार रक्षा की है।

न खलु गोपिकानन्दनो भवा -
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले ॥ ४ ॥

भावार्थ - हे सखे ! आप मात्र यशोदा जी के ही पुत्र नहीं हैं अपितु समस्त देहधारियों के हृदय में स्थित अन्तःसाक्षी हैं। ब्रह्मदेव के द्वारा प्रार्थित होकर संसार की रक्षा के निमित्त आपने यदुकुल में अवतार ग्रहण किया है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

रहस्यवेत्र्यो गोपिकाः श्रुतिरूपिण्यो रहस्यप्रकाशनमुपक्रमन्ति। न केवलं गोपमहिष्या यशोदायाः सुतोऽपित्वन्येषामपीत्यत्र कारागारस्थितवसुदेवदेवकीजन्याष्टमगर्भसङ्केतश्चापि गृह्यते

तत्त्ववादिभिः। सकलदेहिनामिति।
सृष्टिदृष्ट्याण्डजपिण्डजस्वेदजोद्भिज इति चतुर्विधो देहः।
अण्डजा मत्स्यपक्ष्यादयः। पिण्डजा मनुष्यपश्वादयः। स्वेदजा
यूकाकृम्यादयोद्भिजा वनस्पतयः। स्थितिदृष्ट्या
स्थूलसूक्ष्मकारणमिति त्रिविधो देहः। अन्नप्राणमयकोशाभ्यां
सञ्चालितो भौतिकलोकयात्राप्रवर्तकः
कर्मप्रारब्धनिर्माणनिमित्तः स्थूलदेहः।
मनोविज्ञानमयकोशाभ्यां सञ्चालितः
स्वर्गनिकृत्यादिलोकयात्राप्रवर्तकः कर्मप्रारब्धभोगनिमित्तः
सूक्ष्मदेहः। आनन्दमयकोशेन सञ्चालितः
सत्यध्रुवब्रह्मलोकयात्राप्रवर्तकः कर्मासक्तिनिर्मुक्तजीवानां
स्वेच्छया दिव्यलोकोपभोगनिमित्तः कारणदेहः।
संहारदृष्ट्याविनाशिविनाशीति द्विविधः।
सर्गस्थितिसंहारनिग्रहानुग्रहकर्मणि
विष्णुसूर्यशिवशक्तिगणेशादिरूपं धृत्वाथवावतारविधानेन
रामकृष्णकालिकास्कन्दशरभनृसिंहोमादिप्रकटीकृता देहा
अविनाशिन आब्रह्मकीटपर्यन्तशेषास्तु विनाशिनः।
तस्मात्सर्वदेहिनामिति।

रहस्य को जानने वाली श्रुतिरूपिणी गोपियाँ रहस्य का प्रकाशन

करती हैं। केवल गोपियों की रानी यशोदा जी के ही नहीं, अपितु औरों के भी पुत्र हो, यहाँ कारागार में स्थित वसुदेव एवं देवकी के माध्यम से अष्टम गर्भ के रूप में जन्म लेने का संकेत भी तत्त्ववादियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। सभी देहियों में, ऐसा कहते हैं। सृष्टि की दृष्टि से अण्डज, पिण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज, ये चार प्रकार के देह हैं। इसमें मछली, पक्षी आदि अण्डज हैं। मनुष्य, पशु आदि पिण्डज हैं, कीट, जूं आदि स्वेदज हैं। वनस्पति आदि उद्भिज हैं। स्थिति की दृष्टि से स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण, यह तीन प्रकार के देह हैं। अन्नमय एवं प्राणमय कोशों के द्वारा सञ्चालित, भौतिक लोक में निवास तथा क्रिया का प्रवर्तक, कर्मप्रारब्ध के निर्माण का निमित्त स्थूलदेह है।

मनोमय एवं विज्ञानमय कोशों के द्वारा सञ्चालित, स्वर्ग-नरक आदि लोकों में निवास तथा क्रिया का प्रवर्तक कर्मप्रारब्ध के भोग का निमित्त सूक्ष्मदेह है। आनन्दमय कोश के द्वारा सञ्चालित सत्यलोक, ध्रुवलोक, ब्रह्मलोक आदि में निवास तथा क्रिया का प्रवर्तक, कर्म की आसक्ति से मुक्त जीवों की अपनी इच्छा से दिव्यलोकों के उपभोग का निमित्त कारणदेह है। संहार की दृष्टि से अविनाशी एवं विनाशी, यह दो प्रकार के देह हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह एवं अनुग्रह कर्म में विष्णु, सूर्य, शिव, शक्ति, गणेश आदि रूप को धारण करके अथवा अवतारविधान से राम, कृष्ण, कालिका, स्कन्द, शरभ, नृसिंह, उमा आदि

प्रकटीकृत देह अविनाशी हैं, इनके अतिरिक्त ब्रह्मा से कीटपर्यन्त शेष देह विनाशी हैं। इस प्रकार से, "सभी देहियों के" ऐसा कहा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठतीति गीतायाम्। तस्मादन्तरात्मदृक्। क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वर इति योगदर्शने। अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशा इति तत्रैव। पुर इति देहः। तेषु पुर्षु शेते स पुरुषः। देहजीवयोरैक्यभावमविद्या। कर्तृत्वाभिमानोऽस्मिता। सुखभावनयासक्तिमैत्रीबोधो रागः। दुःखभावनयानिर्वृत्तिशत्रुबोधो द्वेषः। देहोऽहमिति मत्वा मरणभयमभिनिवेशः। एभिः पञ्चक्लेशैरबाधित ईश्वरः। फलभेदत्वात्पुण्यपापमिश्रितरहितमिति चतुर्विधं कर्म। कालभेदत्वात्क्रियमाणसञ्चितप्रारब्धमिति त्रिविधं कर्म। भावभेदत्वान्निष्कामसकाम इति द्विविधं कर्म। एवं पञ्चक्लेशनवकर्मभिरनभिहतो नवविधदेहेषु पुर्षु शेते स पुरुष ईश्वरोऽखिलदेहिनामन्तरात्मदृगिति। विष्णोर्नखरसम्भूतो ब्रह्मा वै विखना मुनिरिति निग्रहागमेषु वैष्णवागमेषु च। सत्त्वं सत्त्वाश्रयं सत्त्वगुणं सेवेत केशवम् । योऽनन्यत्वेन मनसा सात्त्वतः समुदाहृत इति पाद्मोत्तरे। सत्त्वमेव सात्त्वं

तत्तनोतीति सात्त्वतो विष्णुः। सत्त्वयुक्तविधानेन सत्त्वरूपिणं नारायणं रामसङ्कर्षणादिभिरुपदिष्टेनैकायनमतेन सात्त्वतसंहितादिभिरर्चयन्ति ये ते सात्त्वतास्तेषां कुलः सात्त्वतकुलस्तस्मात्तेन ब्रह्मणा विखनसा भूभारहरणाय प्रार्थितस्त्वमस्माकं सात्त्वतां कुलेऽवतीर्णोऽसीत्यर्थः।

गीता कहती है कि हे अर्जुन ! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदयदेश में स्थित रहता है। अतएव अन्तरात्मदृक् कहा। योगदर्शन में कहते हैं - क्लेश एवं कर्मविपाक से भिन्न एवं अप्रभावित पुरुषविशेष ईश्वर है। वहीं कहते हैं कि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश, यह पांच क्लेश हैं। पुर का अर्थ देह है। उन पुरसंज्ञक देहों में जो शयन करता है, वह पुरुष है। देह और जीव की एकता का भाव अविद्या है। कर्तृत्व का अभिमान अस्मिता है। सुख की भावना से आसक्त होकर मैत्री का बोध राग है। दुःख की भावना के कारण निवृत्ति का अनुभव करने से शत्रुता का बोध द्वेष है। मैं यह देह हूँ, ऐसा मानकर मृत्यु से भयभीत होना अभिनिवेश है। इन पांचों क्लेशों से जो बाधित नहीं, वह ईश्वर है। फलभेद से पुण्य, पाप, पुण्य-पाप मिश्रित एवं पुण्य-पाप रहित, ये चार प्रकार के कर्म हैं। कालभेद से क्रियमाण, सञ्चित एवं प्रारब्ध, ये तीन प्रकार के कर्म हैं। भावभेद से निष्काम एवं सकाम, ये दो प्रकार के कर्म हैं। इस

प्रकार से पांच क्लेश एवं नौ कर्मों के द्वारा प्रभावित न होता हुआ, नौ प्रकार के पुरसंज्ञक शरीरों में शयन करने वाला वह पुरुष ईश्वर सभी प्राणियों की अन्तरात्मा का द्रष्टा है, ऐसा अर्थ है। भगवान् विष्णु के नखों से उत्पन्न ब्रह्मा ही विखना नामक मुनि हैं, ऐसा निग्रहागम एवं वैष्णवागम में वर्णन है। सत्त्वरूपी, सत्त्व के आश्रय, सत्त्वगुण से युक्त केशव की जो अनन्यभाव से आराधना करता है, वह सात्त्वत कहा गया है, ऐसा पद्मोत्तरपुराण की उक्ति है। सत्त्व ही सात्त्व कहा गया है। जो उस सत्त्व का विस्तार करे, वह सात्त्वत विष्णु हैं। सत्त्वयुक्तविधान से सत्त्वरूपी नारायण की परशुराम, सङ्कर्षण आदि के द्वारा उपदिष्ट एकायनमत से, सात्त्वतसंहिता आदि के द्वारा जो अर्चना करते हैं, वे सात्त्वत हैं, उनका कुल सात्त्वतकुल है। अतएव विखना ब्रह्मा के द्वारा पृथ्वी के भार को हरण करने की प्रार्थना किये जाने पर आप हम सात्त्वतों के कुल में अवतरित हुए हैं, ऐसा अर्थ है।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरण मीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥०५॥

भावार्थ - अपने प्रियजनों की इच्छा पूर्ण करने में अग्रगण्य

वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! जो जन जन्म-मरण के चक्र से भयभीत होकर तुम्हारे चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं, तुम्हारे करकमल उन शरणागतों को अपनी छाया में लेकर निर्भय कर देते हैं। हे प्रियतम ! सबकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले जिस करकमल से तुमने लक्ष्मीदेवी का हाथ पकड़ा था, वही हमारे मस्तक पर रख दो।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

वृष्णिकुलोद्भवानां धुरन्धर इति वृष्णिधुर्य। च इति शब्दे गतौ च। रण इति रमणे श्रुतौ च। मधुरं रमणीयं शब्दं करोतीति चरणम्। गत्यर्थे रमणीयगत्या चलतीति चरणम्। दैवीसम्पदन्तर्गताभयं प्रथमम्। संसृतेर्भयादभयम्। रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयमिति साहित्यदर्पणे। मरणजन्यभयजनकक्लेशविशेषोऽभिनिवेशः। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम इति विष्णुवाक्यम्। भयस्याभाव इत्यव्ययीभावो यद्वा नास्ति भयं यस्मात्तदभयम्। गृह्णाति फलदातृत्वेन जीवानिति ग्रहो ग्रहणार्थे च। काममभिलाषं ददाति कामदः। श्रियञ्च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य च येति पुराणे। येन करेण लक्ष्म्या हस्तं गृहीतवान् तं शिरसि मूर्ध्नि धेहि सन्निधापय।

वृष्णिकुल में उत्पन्न लोगों की धुरी को धारण करने वाले को वृष्णिधुर्य कहते हैं। 'च' शब्द गति एवं शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। 'रण' शब्द वेदों में रमण के रूप में प्रयुक्त होता है। मधुर रमणीय शब्द करने वाला चरण है। गति के अर्थ में रमणीय गति से चलने वाले को चरण कहते हैं। दैवी सम्पदा के अन्तर्गत 'अभय' प्रथम है। संसृति के भय से अभय कहा गया है। साहित्यदर्पण का वचन है कि रौद्रशक्ति से उत्पन्न चित्त में विकलता को भय कहते हैं। मृत्यु से उत्पन्न भय को उत्पन्न करने वाले क्लेशविशेष को अभिनिवेश कहते हैं। विष्णुवाक्य है कि मैं सभी प्राणियों को अभय देता हूँ, ऐसा मेरा व्रत है। भय का अभाव, इस प्रकार से अव्ययीभाव होकर जिसके द्वारा भय नहीं है, उसे अभय कहते हैं। जीवों को फल प्रदान करने की शक्ति से युक्त होने से ग्रह कहते हैं। ग्रहण के अर्थ में भी प्रयोग होता है। कामना एवं अभिलाषा को देता है, वह कामद है। पुराण कहते हैं, देवदेवेश्वर नारायण की पत्नी श्री है। उस हाथ को, जिससे लक्ष्मी का हाथ पकड़ा था, उसे मेरे शिर पर, मूर्द्धा पर स्थापित करें।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।

भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥०६॥

भावार्थ - व्रज के निवासियों के दुःख को दूर करने वाले वीर ! तुमसे प्रेम करने वालों के मद-अहङ्कार को नष्ट करने के लिये तुम्हारी एक मधुर मुस्कान ही काफी है। हे सखे ! तुम हमसे रुष्ट न हो, हमसे प्रेमभाव का व्यवहार करो। हम तो तुम्हारी दासियाँ हैं। हमें अपने कमलसदृश मुखमण्डल का दर्शन कराओ।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद्व्रज उच्यत इति स्कान्दे शाण्डिल्यः। व्रजजन इति गोचरपुनरावर्तिलोकनिवासिनः। आर्तिर्दुःखं दैहिकदैविकभौतिकनामेति। त्रिविधो भावः। पशुवीरदिव्यमित्यत्र वीरभावः। विशेषेणेरयति दूरीकरोति शत्रूञ्च कर्मणि समर्थ इति वीरः। शरणागतभावगतो जनो निजजनः। स्मय इति गर्वार्थे। सखेति सुप्तबुद्धजीवयोः सङ्केतः। द्वा सुपर्णा सयुजा सखायेति श्वेताश्वतरश्रुतिः पैप्पलादसंहितायाञ्च। किं करोमि प्रार्थयति स किङ्करः स्त्रीत्वे किङ्करी। जले रोहतीति जलरुहञ्जलजः पाद्मभावे। आपो नारा इति प्रोक्तमस्त्यग्निवायुहरिवंशभविष्यपद्मशिवब्रह्मब्रह्माण्ड-

स्कन्दभारते च। जले तस्मिन्नयनं कल्पयतीति जलरुहः।
एकार्णवसम्भूतो महाविराडिति। चरति चित्त इति चारुः।

स्कन्दपुराण में शाण्डिल्य ऋषि कहते हैं कि व्रजन शब्द से व्याप्ति का भाव ग्रहण किया जाता है एवं व्यापक होने से व्रज कहते हैं। व्रजजन का अर्थ इन्द्रियगम्य पुनरावर्ती लोक के निवासियों से है। आर्ति का अर्थ दुःख है जो दैहिक, दैविक एवं भौतिक, तीन प्रकार का होता है। भाव के तीन प्रकार हैं - पशुभाव, वीरभाव एवं दिव्यभाव। यहाँ वीरभाव है। विशिष्ट प्रकार से शत्रुओं को नष्ट करता है, उन्हें दूर करता है, कर्म में समर्थ है जो, उसे वीर कहते हैं। जो शरणागतभाव से आ गया है, वह व्यक्ति निजजन कहलाता है। स्मय शब्द गर्व के अर्थ में है। सखा शब्द से सुप्त एवं बुद्ध जीवों का संकेत है।

श्वेताश्वतरोपनिषत् एवं पैप्पलाद संहिता का वचन है कि सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी हैं जो साथ ही उत्पन्न एवं सखाभाव से रहते हैं। "मैं क्या करूँ ?" ऐसी प्रार्थना करने वाला किंकर है। स्त्रीत्व की विवक्षा में किंकरी शब्द हो जाता है। जल में उत्पन्न होता है, वह जलरुह जलज कमल के अर्थ में है। आप (जल) शब्द को नारा कहते हैं, ऐसा अग्नि, वायु, हरिवंश, भविष्य, पद्म, शिव, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, स्कन्दपुराण एवं महाभारत में कहते हैं। उस जल में अपने निवास की कल्पना करने वाला जलरुह कहते हैं।

एकार्णव के जल से उत्पन्न महाविराट् का भाव है। जो चित्त में विचरण करे, वह चारु है।

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥०७॥

भावार्थ - तुम्हारे ये चरणकमल शरणागत जीवों के पापों को नष्ट करने वाले हैं। उनकी सेवा स्वयं सौन्दर्य-माधुर्य से युक्त लक्ष्मीदेवी करती हैं। ये वही चरण हैं जो बछड़ों के पीछे पीछे चलते हैं एवं सर्प (कालिय नाग) के फणों पर पड़े हैं। हमारा हृदय तुम्हारे वियोग में जल रहा है, तुम अपने वे चरणकमल हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हमारी हृदयज्वाला को शान्त कर दो।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

प्रकर्षेण नतः प्रणतः। देहे कर्मप्रारब्धाकर्षेण नतो जीवः प्रणतदेही। अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहितकर्मणः । नृणां जनयतः पापं क्लेशशोकामयप्रदमिति महानिर्वाणतन्त्रे। तत्पापं कर्शयतीति पापकर्शकस्तत्क्रिया पापकर्शनम्। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति

श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रीकृष्णप्रतिज्ञा। तृण्यते भक्ष्यते गवादिभिरिति तृणं लौकिकार्थे। तृह हिंसार्थे तृणः। तृणाहारी गोवत्सः। हिंसार्थे सर्वाहारी कालः। कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्ध इति श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रीकृष्णोक्तिः। युगानुरूपेण जीवत्वेन ब्रह्म तस्य कालस्यानुचरो वत्सानुचरो वा तृणपदानुगः। श्रीरीति लक्ष्मी ऐश्वर्यञ्च। निकेतति निवसत्यस्मिन्निति निकेतनम्। फनति विस्तृतिं गच्छतीति फणास्त्यस्येति फणी। लौकिकार्थे कालियमर्दनसन्दर्भः। गूढार्थे मणिपुरस्थितविष्णोस्तले फणिरूपधारिण्याः कुण्डलिनीशक्त्याः सङ्केतः। कुच इति स्तनः। सङ्कोचार्थे कुचः। मायाक्लेशसङ्कुचितो जीव ईश्वरस्य तारकाङ्घ्रिसंस्पर्शेन वीतमलो भूत्वा मोदते।

जो विशिष्ट प्रकार से आकर्षित होकर झुके, वह प्रणत है। देह में कर्मप्रारब्ध से आकर्षित होने से झुका हुआ जीव प्रणतदेही कहलाया। महानिर्वाणतन्त्र में कहते हैं कि निषिद्ध कृत्य को करने एवं विहित कृत्य के परित्याग से पाप उत्पन्न होता है जो क्लेश, शोक, रोग आदि प्रदान करता है। उस पाप को जो खींच कर नष्ट कर दे, वह पापकर्शक है एवं यह क्रिया पापकर्शन कहलाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा है कि मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा, तुम चिन्ता मत करो। गौ

आदि के द्वारा भक्षण किया जाता है, वह लौकिक अर्थ में तृण कहलाता है। हिंसा के अर्थ में भी तृण शब्द होता है। तृण का आहार करने वाला गाय का बछड़ा है। हिंसा के अर्थ में सबों का भक्षण करने वाला काल है। मैं लोकों के संहार में तत्पर काल हूँ, ऐसी श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण की उक्ति है। वह काल आगे आगे चलता है और युगानुरूप जीवभाव में ब्रह्म उसके पीछे पीछे चलता है।

इस प्रकार बछड़े का अनुगमन करने वाला अथवा बछड़े का अनुकरण करने वाला तृणपदानुग है। श्री शब्द से लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य का भाव है। जिसमें निवास किया जाये वह निकेतन है। विस्तार होकर जाता है वह फण है। उस फण को धारण करने वाला फणी कहलाता है। लौकिकार्थ में कालियमर्दन का सन्दर्भ है। गूढ़ अर्थ में मणिपुर चक्र में स्थित विष्णु के नीचे फणिरूप - धारिणी कुण्डलिनीशक्ति का सङ्केत है। कुच स्तन को कहते हैं। सङ्कोच के अर्थ में भी कुच शब्द है। माया के क्लेश से संकुचित जीव ईश्वर के तारणहार चरणों के संस्पर्श से निष्पाप होकर आनन्दित होता है।

मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।

विधिकरीरिमा वीर मुह्यति -
रधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥०८॥

भावार्थ - हे कमलनयन ! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है। उसका एक एक पद-शब्द-अक्षर मधुर से भी मधुर है। बड़े बड़े विद्वान् उसपर रीझकर अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं। तुम्हारी उस वाणी का रसास्वादन करके तुम्हारी सेविकाएं हम गोपियाँ मोहित हो रही हैं। अब तुम अपने दिव्यामृत से भी अधिक मधुर अधरसुधा पिलाकर हमें संतृप्त कर दो।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

माधुर्यं रातीति मधुरम्। गिरा वागर्थे। बहुभाषणार्थे वल्गुवाक्यम् भगवतोऽखिलं मधुरमिति मधुराष्टके श्रीवल्लभाचार्यः। मनो जानाति ज्ञापयति तोषयतीति मनोज्ञम्। पुष्कं वारि रातीति पुष्करमिति पद्मम्। तादृशौ नेत्रौ यस्य स पुष्करेक्षणः। विधति विदधाति विश्वमिति विधीयेते सुखदुःखेऽनेनेति विधिः। सीधुशब्दस्य माधुर्यं मध्वित्यर्थः। अधरसीधुना अधरामृतेन। आप्यायस्व स्वभृत्यगोपिकानिति।

माधुर्य को जो प्रदान करे वह मधुर है। गिरा शब्द बोलने के

अर्थ में है। बहुत बात करने के निमित्त वल्गुवाक्य शब्द है, जैसा कि मधुराष्टक में श्रीवल्लभाचार्य जी ने कहा है - भगवान् का सबकुछ मधुर है। मन की बात को जानने वाला एवं उसे सन्तुष्ट करने वाला मनोज्ञ है। पुष्क अर्थात् जल को प्रदान करे अथवा जल जिसका उपादान हो उसे पुष्कर अर्थात् मनोज्ञ कहते हैं। उसके ही समान जिसके दो नेत्र हों, वह पुष्करेक्षण है। विश्व को धारण करता है अथवा धारण करवाता है, दुःख एवं सुख के विधान का निर्माण करता है, वह विधि है। सीधु शब्द माधुर्य एवं मधु के अर्थ में है। अधरसीधु के द्वारा अर्थात् अधरामृत के द्वारा अपनी सेविकाओं, हम गोपियों को पिलाकर तृप्त करो।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥०९॥

भावार्थ - तुम्हारी लीलाकथा भी अमृततुल्य है। जो लोग विरहाग्नि में जल रहे हैं, उनके लिये जीवनतुल्य है। बड़े बड़े प्रबुद्ध महात्मा जनों ने उसका गुणगान किया है। वह सारे पापों को नष्ट करती है, विस्तृत एवं मङ्गलमयी है। जो तुम्हारी लीला का गान करते हैं, वास्तव में पृथ्वी पर वे ही सबसे बड़े दानी हैं।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

प्रबन्धकल्पनां स्तोकसत्यां प्राज्ञाः कथां विदुरिति कोलाहलाचार्यः। नास्ति मृतं मरणं यस्मात्तत्तत्पायिनां मरणाभावात्तस्य तथात्वममृतम्। कथामृतमिति। तापस्तु त्रिविधः। दैहिकदैविकभौतिकनामानि। तापत्रयविवर्जितः कथामृतपानेन। कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति सर्वं सर्वतो गच्छति वा कविरेवं कविभिर्व्याख्यायितं तव कथामृतं शुभकर्म स्यति नाशयतीति कल्मषं विदूरीकरोति। श्रवणे कर्णामृतमेव विस्तृतमनन्तपारमस्ति। ये जनास्तव कथागायनं कुर्वन्ति तेऽखिलभूमण्डले दातृणां शिरोमणिः।

कोलाहलाचार्य कहते हैं कि प्रबन्धकल्पना अथवा सत्य घटना को बुद्धिमान् जन कथा कहते हैं। जिसको पीने के बाद मृत्यु नहीं होती एवं पीनेवालों के लिये मरण का अभाव हो जाता है, ऐसे लक्षणों से युक्त पेय को अमृत कहते हैं, अतएव कथामृत का। ताप तीन प्रकार के होते हैं - दैहिक, दैविक एवं भौतिक, ये उनके नाम है। कथामृत के पान से ये तीन ताप नष्ट हो जाते हैं। सब कुछ जानता है, वर्णन करता है, सर्वत्र जिसकी (बौद्धिक) गति है, उसे कवि कहते हैं। ऐसे कवियों के द्वारा बताये गये तुम्हारे कथामृत, जो शुभकर्मों का नाश करने वाले

कल्मष को दूर भगाने वाले हैं, श्रवण करने पर यह कथामृत अनन्तपार (जिसका पार पाना सम्भव नहीं है) ऐसा प्रतीत होता है। जो लोग तुम्हारी कथा का गायन करते हैं, वे समस्त भूमण्डल में दाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणञ्च ते ध्यानमङ्गलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१० ॥

भावार्थ - किसी काल में तुम्हारी प्रेमभरे हास्य एवं चितवन को देखकर, तुम्हारी भांति भांति क्रीडाओं-लीलाओं का ध्यान करके हम आनन्दमग्न हो जाती थीं। वह ध्यान भी परममङ्गलकारी है। उसके बाद तुमने मिलकर हमें एकान्त में हृदय को छूने वाली प्रेम की बातें एवं परिहास किया। हे कपटी सखे ! वे सब वार्ताएं स्मरण आकर हमारे मन को क्षुब्ध किये देती हैं।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

प्रहसितमिति परिहासो हसनमिति। प्रेम्णा विशेषेणेक्षितमिति प्रेमवीक्षणम्। प्रियस्य भावो यथोज्ज्वलनीलमणिकारः सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे । यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा

परिकीर्तित इति। विहरणमिति विहारार्थे विशिष्टप्रकारेण हरणार्थे च। क्रीडार्थं पद्भ्यां गमनमिति विहारः। अद्वितीयवस्तुनि विच्छिद्य विच्छिद्यान्तरेन्द्रियवृत्तिप्रवाह इति वेदान्तसारः। ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्यादिति गरुडपुराण आदिषु। मङ्गति हितार्थं मङ्गलम्। प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिरित्येकादशीतत्त्वम्। रमन्तेऽस्मिन् रहः। देशादन्यत्र रहोऽव्ययं शब्दान्तरं वास्ति सुरतवाचकम्। चैतन्यता संवित्। कुहकमिति कपटभावः। यदा तु सङ्कल्पविकल्पकृत्या मनस्तदेति प्रपञ्चसारतन्त्रे श्रीशंकराचार्यः। मनोऽन्तःकरणसमूहे प्रथमः सङ्कल्पविकल्पकारीति। क्षोभयन्ति उद्वेगमशान्तिं जनयन्तीत्यर्थः।

प्रहसित का अर्थ हंसी-मजाक से सम्बन्धित है। प्रेमपूर्वक विशेषप्रकार से देखने को प्रेमवीक्षण कहते हैं। प्रियता का भाव प्रेम है, जैसा कि उज्ज्वलनीलमणिकार कहते हैं - जो ध्वंस नहीं करने वाला होकर भी (अपने आकर्षणबल से) ध्वंस कर दे, युगल दम्पति के मध्य ऐसा भावबन्धन प्रेम कहलाता है। विहार एवं विशिष्ट प्रकार से हरण, दोनों ही अर्थ में विहरण शब्द आया है। खेलने अथवा मनोरंजन के लिए पैरों से चलने की क्रियागति

को विहार कहते हैं। अद्वितीय वस्तु (ब्रह्म) में सांसारिक बन्धनों एवं चिन्तनों को बारम्बार काटकर इन्द्रियों को वृत्ति को उस अद्वितीय तत्त्व में लगाने की क्रिया को वेदान्तसार में ध्यान कहा गया है। गरुडपुराण आदि में ब्रह्म और आत्मा का एकत्वबोध करने हुए चिन्तन करना ध्यान कहलाता है। जो हित के लिए गतिमान् हो वह मङ्गल है। एकादशी तत्त्व में (अत्रि आदि) का वचन है कि प्रशस्त का आचरण एवं अप्रशस्त की वर्जना ही तत्त्वदर्शी ऋषियों के द्वारा मङ्गल कहा गया हैं। जिसमें रमण किया जाये, उसे रह(स्) कहते हैं। निज देशस्थान से भिन्न रह(स्) शब्द सुरतक्रीडा का वाचक है। चैतन्यता का भाव संवित् कहलाता है। कुहक कपटभाव को कहते हैं। प्रपञ्चसार तन्त्र में श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि जब सङ्कल्प और विकल्प करने लगता है तो मन कहलाता है। अन्तःकरण समूह में जो प्रथम है, सङ्कल्प एवं विकल्प का कार्य करे वह मन है। क्षोभयन्ति का अर्थ उद्वेग और अशान्ति को जन्म देना है।

चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११ ॥

भावार्थ - हे स्वामिन् ! तुम्हारे चरण जब गौचारण के निमित्त व्रज से निकलते हैं तो कमल से भी अधिक सुन्दर एवं कोमल आपके चरणों में जो वन्य नुकीले तृण एवं छोटे पत्थरों के टुकड़े चुभते होंगे, उस वेदना को देखकर हमारे मन पीड़ित हो जाते हैं।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

चलसि - ब्रह्माण्डे सर्वे पिण्डाश्चचलायमानाः सन्ति। ब्रह्माण्ड एव व्रजो यथा स्कान्दे व्यापको व्रज उच्यते। पशु इति पाशबद्धो जीवो यथा तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः। एवं बद्धस्तथा जीवः कर्मनाशे सदाशिवः। पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवश्चैव स्कन्दोपनिषदि। तस्माद्गोचारक इव पाशबद्धानां पशुसंज्ञकानां जीवानां चारयति। नल्यत इति नलिनम् बन्धनं पद्मञ्च। तादृशं कोमलं सुन्दरञ्च नलिनसुन्दरम्। शिलतृणाङ्कुरैः। तीक्ष्णकोणयुक्ता रजःकणाः श्रीकृष्णचरणौ भिन्दन्ति तदा गोपीनां मनो विदीर्णं भवति।

ब्रह्माण्ड में सभी पिण्ड चलायमान् हैं। ब्रह्माण्ड ही व्रज है जैसा कि स्कन्दपुराण में कहते हैं कि व्यापक होने से व्रज है। पाशबद्ध होने से जीव को पशु कहते हैं। जैसा कि, छिलके से ढके रहने पर धान एवं छिलके से मुक्त होने से चावल कहलाता है, वैसे

ही कर्मपाश में बन्धा हुआ चेतन जीव एवं कर्मनाश की स्थिति में सदाशिव कहलाता है। पाश से बद्ध की जीव एवं पाश से मुक्त की सदाशिव संज्ञा होती है ऐसा स्कन्दोपनिषत् का कथन है। अतएव चरवाहे के समान पाशबद्ध पशुसंज्ञक जीवों को चराता है। बन्धन के अर्थ में नलिन पद है, पद्म के भी अर्थ में है। उसके ही समान कोमल एवं सुन्दर को नलिनसुन्दर कहते हैं। तीक्ष्ण रजःकण एवं तृणादि के अङ्कुर की बात करते हैं। जब नुकीले कोणों वाले धूल के कण श्रीकृष्ण के चरणों को भेदते हैं, तब गोपियों का मन भी विदीर्ण हो जाता है।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै -
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहु -
मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

भावार्थ - दिन ढलने पर जब वन से तुम घर की ओर लौटते हो, तम हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमल पर नीले नीले केशसमूह लटक रहे हैं जिनमें गौवों के खुर से उड़ी भारी धूल पड़ी हुई है। हे प्रिय ! अपना वह सौन्दर्य दिखाकर तुम बार बार अपने प्रति हमारे मन में प्रेम का सञ्चार करते हो।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

दिनपरिक्षये - सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुरिति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। तद्दिनस्य क्षये नीलकुन्तलैर्नीलवर्णसंवर्तकमेघश्रृङ्खलासङ्केतः। वनमिति संसारो भवाटवीसिद्धान्तगत्या। घनरजस्वलमिति। पातालतलवासिनानन्तसंज्ञकशेषेण फूत्कारितेन गरलप्रतापेनादृष्टदृश्यार्थः। योगिनां चित्ते संसारोन्मूलने श्रीमन्नारायणसन्निधानलाभहेतुना स्मर इति गायन्ति गोपिकाः।

दिन के क्षय होने का अर्थ कल्प के अन्त से है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन है कि सहस्र महायुग के समान ब्रह्माजी का एक दिन होता है। उस दिन के क्षय होने पर, "नीलकुन्तल" से नीले रंग के संवर्तक मेघों की श्रृंखला का संकेत है। भवाटवी के सिद्धान्त के अनुसार वन का अर्थ संसार है। फिर घनरजस्वल कहते हैं। पाताल के भी नीचे रहने वाले अनन्तसंज्ञक शेषनाग के फुँफकार से जो विष निकलता है, उसके प्रताप से दृश्य भी अदृष्ट हो जाता है, ऐसा अर्थ है। योगियों के चित्त में संसार के उन्मूलन से श्रीमन्नारायण के सन्निधानलाभ को ही "स्मर" शब्द से गोपियाँ गाती हैं।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३ ॥

भावार्थ - तुम्हारे चरणकमल अपनी शरण में आने वाले लोगों की कामनाओं को तुम पूर्ण करने वाले हैं। उन चरणकमलों की सेवा स्वयं श्रीलक्ष्मीजी करती हैं। पृथ्वी उनसे शोभायमती होती है। संकट में घिरे लोगों के द्वारा चिन्तन किये जाने पर वे आपत्तियों का निवारण कर देते हैं। हे रमणश्रेष्ठ ! तुम अपने उन्हीं चरणों को हमारे स्तनों पर रखकर हमारे हृदय की व्यथा को शान्त कर दो।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

मामेकं शरणं व्रज इति गीतायां भगवदुक्तिः। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति तत्रैव। तस्मात् प्रणतकामदः। पद्ममिति कमलार्थे। पद्मजा लक्ष्मीरित्यर्थः। पद्ममिति काल इति लक्ष्मीतन्त्रे। कालस्य पोषिका शक्तिरिति लक्ष्मीस्तस्मात्पद्मजा। तयार्चितं पद्मजार्चितम्। धरणिमण्डनमिति। सर्वं धारयतीति धरा धरति जीवादीनिति

धरणिर्वा। निजचरणचिह्नैस्तस्या मण्डनं धरणिमण्डनमिति। ध्येयमापदि। दैहिकदैविकभौतिकादि - त्रिविधापन्निवारकशक्तिसंयुतौ भगवच्चरणारविन्दौ। स्तन इति पयोधरः। पयो धारयतीति पयोधरः। पय इति दुग्धं जलञ्च। तस्मात्पयोधरशब्दात्पृथ्वीत्यपि गृह्यते। पृथिव्यां स्वचरणन्यासेन दुष्टराक्षसकृन्तनकर्मणा शं विस्तारय।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् की उक्ति है, केवल मेरी ही शरण में आवो। वहीं कहते हैं - "मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा, तुम चिन्ता मत करो", अतएव प्रणतकामद हैं। पद्म शब्द कमल के अर्थ में है। पद्मजा का अर्थ लक्ष्मी है। लक्ष्मीतन्त्र में पद्म का अर्थ काल बताया गया है। काल की पोषिका शक्ति लक्ष्मी है, अतएव पद्मजा है। इस प्रकार से पद्मजा के द्वारा अर्चित चरण हैं। फिर धरणिमण्डन कहते हैं। सबों को धारण करवाती है, वह धरा है अथवा जीवों को धारण करती है वह धरणि है। अपने चरणचिह्नों से उसका मण्डन धरणिमण्डन है जिनका ध्यान आपत्ति के समय करना चाहिये। दैहिक, दैविक एवं भौतिक आदि तीनों प्रकार के तापों का निवारण करने की शक्ति से युक्त भगवान् के दोनों चरणकमल हैं। स्तन का अर्थ पयोधर से है। जो पय को धारण करे वह पयोधर है। पय का अर्थ दुग्ध एवं जल दोनों होता है। अतएव पयोधर शब्द से पृथ्वी का अर्थ भी

ग्रहण किया जाता है। पृथ्वी में अपने चरणों के न्यास से दुष्ट राक्षसों के संहारकर्म के माध्यम से शान्ति का विस्तार करो।

सुरतवर्द्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

भावार्थ - हे वीर ! तुम्हारा अधरामृत प्रेममिलन की आकांक्षा को बढ़ाने वाला है। विरह से उत्पन्न संताप को वह नष्ट कर देता है। यह संगीतमयी बांसुरी निरन्तर उसका चुम्बन करती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, वह पुनः किसी अन्य आसक्ति को स्मरण नहीं करता है। अपना वही अधरामृत हमें भी पिलाओ।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

सुरतमिति लोकोत्तरे प्रेमानन्द भावः। लौकिकान् त्यक्त्वा परमार्थदायकानन्दः सुरतं सुष्ठु रतं रमणं यत्रेति। शोक इति पञ्चक्लेशा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशादयस्तेषां नाशनं शोकनाशनम्। स्वरितवेणुरिति देहः। सप्तस्वरा वेणुमध्ये देहे सप्तचक्राणि भवन्ति यस्मादुच्यते शरीरमाद्यं खलु

धर्मसाधनम्। नास्ति धरायाममृतं यत्तदधरामृतम्। अलौकिकापुनरावर्तिधामयोजननिमित्तलीलामाधुर्यजन्यामृतमधरामृतमिति।

सुरत का अर्थ लोकोत्तर में प्रेमानन्द का भाव है। लौकिक वासनाओं को छोड़कर परमार्थदायक आनन्द, जिसमें भली प्रकार से व्यक्ति रमण करे वह सुरत है। शोक का तात्पर्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश आदि पञ्चक्लेशों से है। उनका नाश ही शोकनाशन कहा गया है। स्वर वाली बांसुरी यह देह है। जैसे बांसुरी के मध्य सात स्वर होते हैं वैसे ही इस शरीर के भीतर सात चक्र हैं अतएव कहा जाता है कि शरीर धर्मसाधन का प्राथमिक उपादान है। जो अमृत इस पृथ्वी में नहीं, वह अधरामृत है। अलौकिक, अपुनरावर्ती धाम से जोड़ने के लिए लीला-माधुर्य से जन्य वह अधरामृत है, ऐसा समझना चाहिए।

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥१५॥

भावार्थ - प्रियतम ! दिन में जब तुम वनविहार के लिए चले

जाते हो, तब तुम्हें न देख पाने के कारण हमारा एक एक क्षण युग के समान बीतने लगता है। जब सन्ध्याकाल में तुम वापस लौटते हो तब तुम्हारे घुंघराले बालों से युक्त सुन्दर मुख को हम देखती हैं एवं उस समय पलक झपकने पर भी जान पड़ता है कि इन नेत्र पलकों को बनाने वाला विधाता मूर्ख है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

अटति भ्रमति भवान्। अह्नि दिवसे, ब्रह्मणो दिवाकल्पे। कानन इति भवारण्ये। त्रसरेणुस्त्रिकं भुङ्क्ते यः कालः सा त्रुटिः स्मृतेति भागवते। क्षणद्वयात्मकः कालः। यदा भूर्लोके महायुगो व्यतीतं भवति तथा दिव्ये लोके त्रुटिरेव। यदा निमेषोन्मेषक्रियायां चक्षुषी निमील्येते तदा भगवद्दर्शनविघ्नकारणेन लोकजनयिता विधाता मूर्ख इव भासते। सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्। शास्त्रगतविधिनिषेधादिसकामकर्मबन्धमेव दृशां पक्ष्मः।

अटति का अर्थ आपके भ्रमण करने से है। अह्नि का अर्थ दिन से है, ब्रह्मा के दिवाकल्प में। कानन का अर्थ संसाररूपी वन से है। भागवत में कहते हैं कि जो तीन त्रसरेणु के बराबर हो उस काल को त्रुटि कहते हैं। यह लगभग दो क्षण के बराबर होता है। जब पृथ्वी में एक महायुग व्यतीत होता है तो परमधाम में त्रुटि भर

का ही काल व्यतीत होता है। जब पलक झपकने की क्रिया के समय दोनों नेत्र बन्द हो जाते हैं, उस समय भगवान् के दर्शन में विघ्न पड़ने के कारण सभी लोकों को बनाने वाला विधाता मूर्ख ही लगता है। शास्त्र सबों के नेत्र हैं। उनमें बताये गये सकामकर्मगत बन्धनरूपी विधिनिषेध ही उन नेत्रों के पलकों के समान हैं।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

भावार्थ - हम अपने पति, पुत्र, भाई-बन्धु एवं कुल-परिवार का त्याग करके उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी सभी चाल एवं संकेतों को समझती हुई तुम्हारी मधुर गान की गति से मोहित होकर यहाँ आयी हैं। छलिया ! इस प्रकार रात्रि को आयी हुई स्त्रियों का तुम्हारे अतिरिक्त और कौन परित्याग कर सकता है ?

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

पाति रक्षतीति पतिः सूयते स्मेति सुतः। परस्पराकाङ्क्षा योग्यता चान्वयः। भ्राजत इत्येकगर्भजातो भ्राता। बन्धुरेव

सुहृत्। एतेषां लोकसम्बन्धानामाज्ञामतिक्रम्य गोप्योऽच्युतसंज्ञकं परमेष्ठिनमाराधयन्ति। स्वमहिम्नो न भवति च्युतस्सोऽच्युतः। ब्रह्मरहस्यवेत्त्यो गोप्यः शब्दब्रह्मरूपिण्यः स्वमायाजन्यचिद्विलासभवे क्रीडन्तं परब्रह्म श्रीकृष्णं मायासम्बलिनं कितव इति सम्बोधयन्ति।

जो रक्षा करे वह पति है। जिसे जन्म दिया जाये, वह सुत है। परस्पर सम्बन्ध की आकांक्षा वाले अन्वय कुटुम्बी कहलाते हैं। एक ही गर्भ से उत्पन्न सम्बन्धी को भाई कहते हैं। सौहार्द्र से युक्त व्यक्ति को सुहृत् कहते हैं। इन सब लौकिक सम्बन्धों की आज्ञा का अतिक्रमण करके गोपियाँ अच्युतसंज्ञक परब्रह्म की आराधना करती हैं। जो कभी अपनी महिमा से नीचे न गिरे, वह अच्युत है। ब्रह्म के रहस्य को जानने वाली शब्दब्रह्मरूपिणी गोपियाँ अपनी माया से उत्पन्न अपने ही चिद्विलासरूप संसार में क्रीड़ा करते हुए परब्रह्म श्रीकृष्ण को उनकी मायाबलशीलता के कारण कपटी ! इस प्रकार से सम्बोधित करती हैं।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते

मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥

भावार्थ - एकान्त में तुम मिलन की इच्छा एवं प्रेम भाव को जगाने वाली बातें करते थे। परिहास करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवन से हमें देखकर मुस्कुराते थे और जहाँ लक्ष्मी जी का सदैव नित्य निवास है, ऐसे तुम्हारे विशाल वक्षःस्थल को हम देखती थीं। हमारी लालसा निरन्तर बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

रहसि एकान्तस्थितौ। संविदमिति चैतन्यावस्थायाम्। हृद्देशे दहरे सर्वनाडीसमूहे सुषुम्नोदेति। प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणमिति हासमात्रेण कृपालावण्यदृष्टिमात्रेण जगन्निर्माणं करोति। बृहदुरो धर्मस्य सङ्केतः। विराट्पुरुषस्य वक्षो धर्मः स तु बृहत्। धार्मिकमुपैति लक्ष्मीः।

रहसि का अर्थ एकान्त स्थिति में है। संवित् का अर्थ चैतन्यावस्था में है। दहरसंज्ञक हृदयदेश में सभी नाडियों के मध्य सुषुम्ना नाम की नाड़ी है जो ऊपर की ओर उठती है। प्रहसितानन एवं प्रेमवीक्षण का तात्पर्य यह है कि ईश्वर अपनी हंसी से एवं कृपामयी लावण्यदृष्टि से ही संसार का निर्माण कर देते हैं। विशाल वक्षःस्थल से धर्म का संकेत है। धर्म विराट्

पुरुष का वक्षःस्थल है, जो विशाल है। ऐसे ही धार्मिक व्यक्ति के पास लक्ष्मी आती है।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

भावार्थ - प्यारे ! तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियों के सम्पूर्ण दुःख-ताप को नष्ट करने वाली और विश्व का पूर्ण मङ्गल करने के लिये है। हमारा हृदय तुम्हारी लालसा से भर रहा है। तुम हमें कोई ऐसी औषधि दे दो जिससे तुम्हारे निजजनों का यह हृदयरोग सर्वथा निर्मूल हो जाये।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

व्रज इति व्यापको ब्रह्माण्डगोलकः। वनमिति भुवनं। वनौकसामिति भवारण्यपतितानां जीवानाम्। वृजिनमिति पापम्। विश्वस्याखिलचराचरनिकायजीवानां पापं हित्वा तेभ्यो मङ्गलं ददाति स विश्वमङ्गलः। नामोच्चारणभेषजादिति हृद्रुजां निषूदनम्।

व्रज का अर्थ व्यापक ब्रह्माण्डगोलक है। वन का अर्थ भुवन है। वन में रहने वाले का अर्थ इस संसाररूपी वन में गिरे हुए जीवों से है। वृजिन का अर्थ पाप है। सम्पूर्ण विश्व के चराचर अखिल जीवसमूह के पापों को नष्ट करके उन्हें मङ्गल देने वाला विश्वमङ्गल है। नामोच्चारणरूपी औषधि से हृदय के रोग को नष्ट करने का अर्थ है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९॥

भावार्थ - तुम्हारे चरण कमल से भी अधिक कोमल हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनों पर भी बहुत डरते हुए धीरे से रखते हैं ताकि उन्हें कहीं चोट न लग जाये। उन्हीं चरणों से तुम रात्रि के समय दारुण वन में छिपे हुए भटक रहे हो। क्या कंकड़ पत्थर आदि की चोट लगने से उनमें पीड़ा नहीं होती ? हमें तो यह सब सोचकर ही चक्कर आ रहा है, हम अचेत हो रही हैं। हे प्राणनाथ ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये ही जी रही हैं।

श्रीनिग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका

गोप्यो निवेदयन्त्यन्ते - तव पादौ कमलादपि कोमलौ। वयं तौ स्वहृदये धारणे भीताः कठोरबुद्ध्या। ताभ्यां कथं शिलादिषु शिततृणकण्टकेषु भ्रमसि ? न ते व्यथा जायते ?

अन्त में गोपियाँ निवेदन करती हैं - तुम्हारे दोनों चरण कमल से भी अधिक कोमल हैं। हम अपने कठोर हृदय में उन्हें धारण करने से भी डरती हैं। उनसे किस प्रकार तुम पत्थरों में एवं तीखे घास एवं कांटों में भ्रमण करते हो ? क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होती ?

एषा विद्योत्तमाटीका ज्ञानिनामपि बोधिनी।
शोधनी लोकरक्तानां निग्रहेण प्रकाशिता॥

यह विद्योत्तमाटीका ज्ञानियों को भी बोध प्रदान करने वाली है। संसार में आसक्त जनों को शुद्ध करने वाली है और इसे निग्रहाचार्य के द्वारा प्रकाशित किया गया है।

श्रीमद्भागवतञ्चैव देवीभागवतं तथा।
महाभागवतं पुण्यं प्रपठन् जाह्नवीतटे॥
दिव्ये वाराणसीक्षेत्रे स सात्मातत्त्ववत्सरः।
लिलेख गोपिकागीतं विश्वेशकृपयान्वितः॥

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

उन्होंने श्रीमद्भागवत, श्रीमद्देवीभागवत एवं पुण्यस्वरूप महाभागवत को दिव्य वाराणसी क्षेत्र में गंगाजी के तट पर पाठ करते हुए पच्चीस वर्ष की अवस्था में भगवान् विश्वनाथ की कृपा से गोपिकागीत (पर यह टीका) लिखी।

|| इति श्रीमद्भागवतोक्ते गोपिकागीते श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता विद्योत्तमाटीका सम्पूर्णा ||

| इस प्रकार से श्रीमद्भागवत में कहे गये गोपिकागीत पर श्रीनिग्रहाचार्य के द्वारा लिखी गयी विद्योत्तमाटीका पूर्ण हुई |